Vol. 13
Issue 1&2
15 July 2022
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
शोध संचयन

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की सांस्कृतिक शब्दावली

बीज शब्द :

मानव संस्कृति ने बहुत लंबे समय के उतार-चढ़ावो के बाद आज की अपनी स्थिति को प्राप्त किया। इन अर्थों में भारतीय संस्कृति विश्व में सर्वाधिक व्यापक और समृद्ध है। विश्व के तमाम भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि यूरोपीय परिवार की समस्त भाषाएं संस्कृत से निकली है। इसी तरह अनेक जातियों की अपनी-अपनी भाषाओं के शब्दों ने भारतीय भाषाओं को समृद्ध किया। आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का काल समुद्रगुप्त, हर्षवर्धन या दक्षिण के साथवाहन राजाओं के समय कों 'अनामदास का पौथा' में उपनिषद कालीन है। उन्होंने तुर्कशासन, पृथ्वीराज और जयचंद्र के काल की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण किया। उस समय भारत में तमाम संस्कृतियों का मिलन हो रहा था और इस मिलन से उस समय की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण हो रहा था। द्विवेदी जी के उपन्यासों में बौद्ध, वैष्णव, शाक्त और जैन आदि धर्मों में प्रचलित सांस्कृतिक, परंपराओं, उत्सवों आदि की शब्दावली का समृद्ध रूप देखने को मिलता है।

*****

डॉ० राजनारायण शुक्ल
एस0 डी0 कालेज, गाजियाबाद

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की सांस्कृतिक शब्दावली

हिंदू ग्रंथों में ऐसा माना जाता है- कि प्रलय के उपरांत ईश्वर ने संपूर्ण ब्रह्मांड का विलय अपने विराट शरीर में कर लिया और योगनिद्रा में चले गए। युगो बाद योगनिद्रा से बाहर आकर उनकी आंख खुली तो संपूर्ण ब्रह्मांड में भी अकेले थे। चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था। इस घोर एकाकीपन से वे विचलित हो गए। उनके मन में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न हुई। कुछ विद्वानों ने इसे ईश्वर के मन में 'विकार' का उत्पन्न होना माना है उनका मानना है कि यह सृष्टि ईश्वर के विकार के परिणाम स्वरुप उत्पन्न हुई है। इस कथा से यह भी सिद्ध होता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के रुक जाने पर चाहे फिर वह शिखर पर पहुंची सांस्कृतिक सभ्यता में हो या फिर सर्वोच्च परम पुरुष में, विकार आ जाना स्वभाविक है। इसलिए सांस्कृतिक प्रक्रिया रुकनी नहीं चाहिए। चाहे वह कितने ही शिखर सोपान पर हो। सांस्कृतिक प्रक्रिया के रुकने का अर्थ है कि सभ्यता में विकार का प्रारंभ। परंतु यह प्रारंभ भी अगर एक नए युग नई संस्कृति के बनने का संकेत है तो वह विकार भी एक नैसर्गिक, एक दैवीय प्रक्रिया मानी जाएगी।'

सृष्टि चाहे ईश्वर के विकार का परिणाम हो पर उस में नए युग नई, संस्कृति के उदय के संकेत होते हैं। जब से मनुष्य का जन्म हुआ। पुनः एक सांस्कृतिक प्रक्रिया चल पड़ी। अपने जन्म काल से ही मनुष्य जंगल के एक आदिम प्राणी से लेकर अपनी लंबी यात्रा में अपना परिष्कार करते हुए अपना सांस्कृतिकरण करते हुए आज इस सोपान पर पहुंचा है। हिंसा ही जिसका मुख्य आधार थी उस मनुष्य के जीवन में 'अहिंसा परमोधर्मः' का सिद्धांत आ गया। जीवन के हर क्रिया कलाप, आचार-व्यवहार, चिंतन-मनन में वह आदिम मनुष्य से मानव और मानवेत्तर बनने की दिशा में अग्रसर है, यही संस्कृति है। महादेवी वर्मा संस्कृति के बारे में इस तरह विचार करती हैं- ''संस्कृति शब्द से हमें जिस का बोध होता है, वह वस्तुतः ऐसी जीवन पद्धति है जो एक विशेष प्राकृतिक परिवेश में मानव-निर्मित परिवेश संभव कर देती है और फिर दोनों परिवेशों की संगति में निरंतर स्वयं आविष्कृत होती रहती है यह जीवन पद्धति ना केवल वाह्य, स्थूल और पार्थिव है और न मात्र आंतरिक सूक्ष्म और अपार्थिव। वस्तुतः उसकी ऐसी दोहरी स्थिति है, जिसमें मनुष्य के सूक्ष्म विचार, कल्पना, भावना आदि का संस्कार, उसकी चेष्टा, आचरण आदि वाहयाचार, परिष्कृति उसके अंर्तजगत पर प्रभाव डालती है।'[1] संस्कृति के संबंध में डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं- संस्कृति वह वस्तु है जो स्वभाव, माधुर्य मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है।[2] रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि ''जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।[3] जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि ''मनुष्य की श्रेष्ठ साधना ही संस्कृति है।[4] ''संस्कृति'' शब्द ''सम'' उपसर्गपूर्वक 'कृ' से 'कितन' प्रत्यय लगाकर एवं भूषण अर्थ में सुट आगम करके बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है- संशोधन करना, सुध ारना, उत्तम बनाना, सुंदर या पूर्ण बनाना, सजाना, संवारना, परिष्कृत करना, शिक्षित करना, पवित्र करना, शुद्ध करना, सुसज्जित करना, सुसंपन्न करना, पकाना, संचित करना, सुनिर्मित करना।[5] वैदिक साहित्य में 'सम' पूर्वक 'कृ' धातु का प्रयोग शिल्प या कला के संबंध में किया गया है- ''छंदोंमय वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते''। इन कलाओं के द्वारा यजमान को आत्मा की संस्कृति उपलब्ध होती है।

वस्तुतः मनुष्य का सामान्य व्यवहार जल की प्रकृति के अनुसार होता है। जल को अगर समतल जमीन पर सहज रूप से जोड़ा जाए तो वह ढलान की ओर जाएगा। मनुष्य भी अपने सहज रूप में पतन की ओर उन्मुख होता है। उसके उत्थान और संस्कार के लिए विशिष्ट क्रियाकलाप, प्रयास और योजना करनी पड़ती है। मनुष्य के यही प्रयास संस्कृति को जन्म देते हैं।

मानव संस्कृति ने बहुत लंबे समय के उतार-चढ़ावो के बाद आज की अपनी स्थिति को प्राप्त किया है। इन अर्थों में भारतीय संस्कृति विश्व में सर्वाधिक श्रेष्ठ व्यापक और समृद्ध है। ऋग्वेद से पूर्वकी संस्कृति से लेकर ऋग्वेद कालीन संस्कृति, आर्य, द्रविड़, कोल, किरात और कालांतर में शक, यवन, हूण, कुषाण, आभीर, मंगोल आदि अनेकानेक विश्व जातियां भारत में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह जातियां आक्रमणकारी थी और उन्होंने भारतीय सभ्यता को अपूर्णनीय क्षति पहुंचाई। 'परंतु भारतीय संस्कृति इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रही। शक, हूण, कुषाण, आभीर आदि जातियां यही बस गई। उन्होंने यहां के भागवत धर्म, शैव, बौद्ध, जैन आदि धर्मों को अंगीकार किया। इस प्रकार उनका रहन-सहन, वेश-भूषा आदि ने भी भारतीय संस्कृति में अपना प्रभाव छोड़ा है।[6] जबकि वह स्वयं पूरी तरह भारतीय संस्कृति में आत्मसात हो गए। द्विवेदी जी कहते हैं कि ''हमारे प्राचीन साहित्य में असुर, दैत्य, दानव, नाग, सुपण, यक्ष किन्नर, गंधर्व, वानर, भालू, शकुनी, उलूक, मत्स्य, खस आदि अनेक जातियों की चर्चा है, जो किसी रूप में अपना धर्म-विश्वास आचार-विचार कला, कौशल इस देश में रख गई है। इन सभी के संयुक्त प्रयत्नों का फल ही भारतीय संस्कृति है।[7] इन सभी जातियों के आचार, विचारों ने ही नहीं उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम उनकी भाषाओं ने भी भारत की भाषाओं को गढ़ने का काम किया। अपभ्रंश

को आभीरो की भाषा माना गया। परंतु बाद में यही भाषा लोक भाषा बनती चली गई। अर्थात यहां रह रही तमाम जातियों पर इसका प्रभाव पड़ा और उन्होंने इसे अपना लिया। इसी तरह विश्व के तमाम भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि यूरोपीय परिवार की समस्त भाषाएं संस्कृत से निकली है। इसी तरह अनेक जातियों की अपनी-अपनी भाषाओं के शब्दों से भारतीय भाषाओं को समृद्ध किया गया। द्विवेदी जी कहते हैं कि ''शब्द हमारे अंतवैयक्तिक संबंधों के प्रतीक हैं। इन संबंधों को अधिक स्पष्ट भाषा में सामाजिक कह सकते हैं। वे इस उद्देश्य से बनाए गए हैं कि एक व्यक्ति की भावना दूसरे के चित्त में आसानी से उतार दी जा सके। व्यक्ति यदि अपने-आप में ही परिपूर्ण होता, तो शब्द द्वारा अर्थ को प्रकट करने वाली भाषा की आवश्यकता नहीं होती।[8]

शब्द द्वारा अभिव्यक्त भाषा मनुष्य के सामाजिक संबंधों का प्रतीक है तमाम जातियों और वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध और जैन आदि धर्मों में परंपराओं, उत्सवों और साधनाओं के निर्मित्त तमाम प्रकार के शब्दों का जो प्रयोग हुआ उसमें भी आदान-प्रदान बराबर निरन्तर चलता रहा। शैवो के अघोर भैरव बौद्धों में अक्षोभ्य भैरव बन गए। ऐसे कितने ही उदाहरण हैं। जिनमें भारतीय भाषाओं की संस्कृत शब्दावली समृद्ध होती रही।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का काल समुंद्रगुप्त हर्षवर्धन, या दक्षिण के सातवाहन वंशी राजाओं के समय का या 'अनाम दास का पोथा' में उपनिषद कालीन है। उन्होंने तुर्क शासन, पृथ्वीराज और जयचंद्र के काल की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण किया। इस प्रकार लगभग सारे भारत वर्ष में होने वाली राजनैतिक सामाजिक उथल-पुथल का दृश्य उनके उपन्यासों में देखने को मिल जाता है। उसी समय भारत में तमाम संस्कृतियों का मिलन हो रहा था और इस मिलने से उस समय की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण हो रहा था।

प्रस्तुत शोध का विषय ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व और उनके उपन्यासों की सांस्कृतिक शब्दावली है। आचार्य द्विवेदी के प्रथम उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में ही अनेक सांस्कृतिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। उपन्यास के तीसरे पृष्ठ पर ही पुत्र-जन्म के उपलक्ष में राजा की ओर से जुलूस निकालने का वर्णन किया गया है। जिसमें नारियों के वस्त्र भूषण आदि का वर्णन है जो तत्कालीन संस्कृति का चित्रण करता है। बाणभट्ट की आत्मकथा में तत्कालीन धार्मिक स्थिति का भी चित्रण किया गया है भट्टिनी महावराह की उपासना करती हैं तो आचार्य सुगत भद्र बौद्ध हैं। सुगतभद्र के संबंध में 'शून्य', 'निरालंब', 'परमतत्व' आदि जैसे दार्शनिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार एक और वैदिक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। तो दूसरी ओर कौलाचार्य अघोर भैरव के माध्यम से तांत्रिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है। वैष्णव धर्म भी अपनी मजबूती बनाए हुए था। इसलिए वैष्णव धर्म की शब्दावली भी बन रही थी। उपन्यास में राजदरबार का विस्तार से वर्णन किया गया है। पाश, क्रीड़ा, वीणा, चित्रफलक आदि कलात्मक विनोदो का वर्णन है। नाटक से संबंधित शब्दावली का प्रयोग भी हुआ है। राजनीति की शब्दावली का प्रयोग भी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के दूसरे उपन्यास 'चारुचंद्रलेख' में भी सांस्कृतिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है जो अनेक स्थलों पर बाणभट की आत्मकथा से भिन्न भी है। 'सात वाहन' शब्द से लेकर पारद रसायन संबंधी अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। दोनों उपन्यासों में धर्म की स्थिति और राजनीति की शब्दावली में भी अंतर है। नाटी माता के माध्यम से नृत्य और संगीत की शब्दावली का प्रयोग हुआ है तो भगवती विष्णुप्रिय की आराधना और उनके द्वारा प्रयुक्त धार्मिक और दार्शनिक शब्दावली महत्वपूर्ण है। अमोध्वज के माध्यम से 'सिद्धि' की शब्दावली का प्रयोग किया गया है। धीर शर्मा सहिताओं की शब्दावली का प्रयोग करते हैं। नीलधारा की उपासना और उससे संबंधित शब्दावली का प्रयोग भी किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के तीसरे उपन्यास 'पुनर्नवा' में भी सांस्कृतिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से यह उपन्यास पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है, इसलिए उसकी शब्दावली भिन्न है। वैष्णव धर्म के प्रभाव से प्रेम संबंधी शब्दावली का प्रयोग हुआ है तो सिद्धाश्रम की कथा के माध्यम से शाक्त शब्दावली का प्रयोग किया गया है। मंजुला के माध्यम से नृत्य और गीत से संबंधित शब्दावली है जिसमें सहृदय और भवानु प्रवेश जैसे शब्द प्रयोग आए हैं। द्विवेदी जी का चतुर्थ और अंतिम उपन्यास 'अनाम दास का पोथा' उपनिषद कालीन संस्कृति पर आधारित है इसलिए उसकी सांस्कृतिक शब्दावली तीनों ही उपन्यासों से भिन्न है। सभी उपन्यासों के भौगोलिक क्षेत्र अलग-अलग हैं। प्राचीन नगरों और उनके वैभव का वर्णन भी किया गया है। जिसकी शब्दावली भी भिन्न है।

सन्दर्भ :-

1. वर्मा महादेवी : भारतीय संस्कृति के स्वर पृ0 47
2. डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन, स्वतन्त्रता और संस्कृति पृ0 33
3. दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय पृ0 5
4. द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद : ग्रन्थावली खण्ड 9पृ0 200
5. आप्टे वामनराव : दिप्रेक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी पृ0942
6. माचवे प्रभाकर : भारतीय संस्कृति प्रथम खण्ड पृ0 3
7. द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद : ग्रन्थावली भाग 9पृ0 303
8. द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद : ग्रन्थावली भाग 10 पृ0 88

◆◆◆